टहरौली: शौर्य, संस्कृति और इतिहास की गौरवगाथा

मेरे गांव टहरौली का इतिहास

किसी भी नगर, गांव या कस्बे की पहचान केवल उसके वर्तमान स्वरूप से नहीं होती। उसकी वास्तविक पहचान उसके इतिहास, संस्कृति और उन स्मृतियों से निर्मित होती है, जिन्हें समय भी मिटा नहीं पाता। अपने गांव या नगर के इतिहास को जानना केवल राजाओं, युद्धों और किलों की जानकारी प्राप्त करना नहीं है, बल्कि उन लोगों के जीवन, उनके साहस, उनकी आस्था और उनकी जीवन शैली को समझना भी है, जिन्होंने इस भूमि को अपनी कर्मभूमि बनाया। यही कारण है कि किसी भी स्थान का इतिहास उसकी सबसे मूल्यवान धरोहर माना जाता है।

टहरौली एक बेहद शांत और साधारण कस्बा प्रतीत होता है किन्तु यह यह अत्यंत गौरवपूर्ण अतीत अपने भीतर संजोए हुए है। टहरौली का इतिहास बुंदेलखंड के व्यापक इतिहास से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। चेदि जनपद, दशार्ण प्रदेश, जैजाकभुक्ति, चंदेलों का उत्कर्ष, बुंदेला वंश का उदय, ओरछा राज्य का विस्तार, मराठों का प्रभाव और अंग्रेजी शासन जैसे अनेक ऐतिहासिक पड़ावों ने इस क्षेत्र की पहचान को आकार दिया।

टहरौली, जिला झाँसी की एक तहसील है। यह जिला मुख्यालय से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मेरे इस छोटे से कस्बे की शान और पहचान बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक और प्रसिद्ध टहरौली किले से है। यह मेरे टहरौली की आन, बान और शान बनकर सदियों से खड़ा हुआ है। कितनी ही पीढ़ियों का बचपन इस किले में खेलते और इसकी मजबूत दीवारों को महसूस करते हुए गुजरा है। हालाँकि, टहरौली का इतिहास जानने से पहले हमें बुन्देलखण्ड के इतिहास को थोड़ा और करीब से जानना होगा। तो आइये आपको ले चलते हैं बुन्देलखण्ड की इतिहास यात्रा पर और पलटते हैं कुछ पुराने पन्ने।

बुन्देलखण्ड का इतिहास सहस्त्राब्दियों पुराना रहा है। इसे प्राचीन चेदि जनपद का भाग माना गया है। यह जनपद कुरु जनपद के चतुर्दिक यमुना के समीप तक विस्तृत था। कुछ विद्वान चेदि की प्राचीनता ऋग्वैदिक काल तक ले जाते हैं। पाणिनी ने चेदि जनपद का उल्लेख वत्स के पड़ोसी जनपद के रूप में किया है। महाभारत में चेदि जनपद का उल्लेख कुरु, पांचाल, मत्स्य और दशार्ण आदि के साथ हुआ है। अर्थशास्त्र में चेदि देश को हाथियों की अच्छी नस्ल के लिए देश भर में प्रसिद्ध बतलाया गया है। बौद्ध साहित्य में षोड्स

महाजनपदों में चेदि का उल्लेख है, जिसकी राजधानी सौतमयी बतलायी गयी है, जो कि ब्राह्मण साहित्य की शुक्तिमती व बौद्ध साहित्य की सोथवती नगरी है। टामली द्वारा वर्णित सेन्द्राबतिस का तारतम्य कनिंगहम वर्तमान बुन्देलखण्ड से करते हैं।

बुन्देलखण्ड को दशार्ण प्रदेश भी कहा जाता है। ईसा पूर्व कात्यायन, कौटिल्य तथा कालिदास आदि ने अपने-अपने ग्रन्थों में दशार्ण का नाम का उल्लेख किया है। इतिहासकारों की ऐसी भी मान्यता है कि बुन्देलखण्ड की प्रसिद्ध नदी धसान (दशार्ण) है इसी के अभिसिंचित क्षेत्र को दशार्ण कहा जाता था। मौर्य व शुंग काल से लेकर विशेषतः चंदेलों के समय तक यह परिक्षेत्र मध्य देश, दशार्ण देश तथा जैजाकभुक्ति जैसे नामों से समय-समय पर जाना जाता रहा है।

जुझौति सम्भवतः बुन्देलखण्ड का प्रथम नाम था। स्कंद पुराण में इसका उल्लेख हुआ है। चीनी यात्री ह्वेनसांग (युवान-चांग) संभवतः इस क्षेत्र का उल्लेख 'चि-चिन्टों' के नाम से करता है। विवरण में इसे उज्जयिनी के उत्तर-पूर्व की ओर 1000 किमी अथवा 167 मील दूरी पर बताया गया है। यहाँ अनेक बौद्ध विहार तथा 10 मंदिर थे। चि-चिन्टों परिक्षेत्र अपनी उपज के लिए प्रसिद्ध था।

महोबा के चंदेल अभिलेख में चंदेल शासक जय शक्ति ने इस क्षेत्र को जैजामुक्ति नाम दिया है। अभिलेख में 'जैजामुक्ति' जैजाक भुक्तिक व जैजाक मुक्ति मण्डल एवं जैजाहुति कहा गया है।

हालाँकि, आज के बुन्देलखण्ड की कहानी काशी से होती है। काशी के शासक कर्णपाल गहरवार (करनपाल), जिन्हें भगवान श्रीराम के पुत्र लव का वंशज माना जाता है, अपने समय के प्रतापी और न्यायप्रिय राजा थे। उनके पांच पुत्र थे। कर्णपाल ने अपने पुत्रों में हेमकरण की योग्यता और राजकाज में उनकी अद्भुत दक्षता को देखकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी घोषित कर राज्य की बागडोर सौंप दी। परन्तु, कर्णपाल के देहावसान के पश्चात हेमकरण के भाइयों ने छल और षड्यंत्र का सहारा लेकर उनसे राजसिंहासन छीन लिया।

अपने ही भाइयों के विश्वासघात ने हेमकरण के हृदय को भीतर तक आहत कर दिया। राज्य, सम्मान और अधिकार सब कुछ एक ही क्षण में उनसे छिन गया। निराश और दुखी हेमकरण अपने कुलपुरोहित के पास पहुंचे। कुलपुरोहित ने उनकी व्यथा सुनकर कहा, हे राजन, जब मनुष्य के सभी मार्ग बंद हो जाएं तब उसे भगवन की शरण लेनी चाहिए। आपको अपनी कुलदेवी मां विंध्यवासिनी की शरण में जाना चाहिए। वही आपकी रक्षा करेंगी और आपके जीवन का नया मार्ग प्रशस्त करेंगी।

कुलपुरोहित की आज्ञा को ईश्वरीय संकेत मानकर हेमकरण अपने कुछ खास लोगों के साथ मिर्जापुर स्थित मां विंध्यवासिनी के पावन धाम पहुंचे। उन्होंने देवी को प्रसन्न करने के लिए कठोर तपस्या आरम्भ कर दी। प्रतिदिन वे अपने अंगूठे को काटकर उसके रक्त से माता का तिलक करते और पूर्ण श्रद्धा के साथ उनकी आराधना करते।

यह क्रम लंबे समय तक चलता रहा परन्तु, जब उन्हें देवी के दर्शन नहीं हुए तो उनका मन गहन निराशा से भर उठा। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि जब जीवन का उद्देश्य ही समाप्त हो गया है तो इस जीवन का कोई मूल्य नहीं। उन्होंने मां के चरणों में अपना शीश अर्पित करने का संकल्प लिया। उन्होंने जैसे ही अपनी तलवार गर्दन पर रखी और बलिदान देने का प्रयास किया, उसी क्षण मां विंध्यवासिनी उनके सम्मुख प्रकट हो गईं। देवी ने उन्हें बलिदान देने से रोक लिया किन्तु तलवार का स्पर्श होते ही उनके गले से रक्त की पांच बूंदें धरती पर गिर चुकी थीं।

कहा जाता है कि इन्हीं पांच रक्त बूंदों के कारण उनका नाम पंचम सिंह पड़ा। 'पांच' से पंचम और 'बूंद' से आगे चलकर उनके वंश को 'बुंदेला' की उपाधि प्राप्त हुई। तभी से वे पंचम सिंह बुंदेला के नाम से विख्यात हुए।

मां विंध्यवासिनी ने स्नेहपूर्वक कहा, 'वत्स, मैं तुम्हारी अटूट भक्ति से प्रसन्न हूं, जो चाहो वर मांगो।'

हेमकरण की आंखों से अश्रुधारा बह निकली। उन्होंने विनम्र स्वर में कहा, 'मां, आप तो सर्वज्ञ हैं। मेरे भाइयों ने छलपूर्वक मेरा समस्त राज्य छीन लिया है। अब मैं कहां जाऊं, क्या करूं, मेरे लिए कौन सा मार्ग शेष है?'

मां ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, 'वत्स, यहां से प्रस्थान करो। मार्ग में तुम्हें एक बरगद के वृक्ष पर बैठा हुआ गिद्ध दिखाई देगा। वह जहां तक उड़ता हुआ जाएगा और जिस स्थान पर अपना बसेरा बनाएगा, वहीं तुम अपने नए साम्राज्य की नींव रखना। मेरी कृपा सदैव तुम्हारे साथ रहेगी।'

देवी की आज्ञा को सिर माथे पर रखकर पंचम सिंह अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ विंध्यांचल की पर्वतमालाओं से आगे बढ़े। वे उस गिद्ध के पीछे पीछे चलते हुए जेजाकभुक्ति क्षेत्र में पहुंचे। उस समय वहां खंगार क्षत्रिय शासकों का शासन था और उनकी राजधानी कुण्डार का दुर्ग था, जिसे अभेद्य और अपराजेय माना जाता था।

कुण्डार के विशाल दुर्ग को देखकर पंचम सिंह ने आंखें बंद कर अपनी आराध्य देवी का स्मरण किया। भक्त की पुकार सुनते ही मां विंध्यवासिनी गिद्ध पर सवार होकर उनकी सहायता के लिए वहां उपस्थित हुईं। देवी

के आशीर्वाद और दिव्य शक्ति से प्रेरित होकर पंचम सिंह ने गढ़कुण्डार पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण इतना अचानक और प्रचंड था कि खंगार शासक को संभलने का अवसर ही नहीं मिला। अंततः अपराजेय माने जाने वाले गढ़कुण्डार पर पंचम सिंह बुंदेला का अधिकार स्थापित हुआ और वहीं उनका राजतिलक संपन्न हुआ।

इस विजय में चूँकि देवी स्वयं गिद्ध पर सवार होकर अपने भक्त की सहायता के लिए आई थीं इसलिए पंचम सिंह ने सर्वप्रथम मां गिद्धवाहिनी का भव्य मंदिर बनवाया। गढ़कुण्डार पर अधिकार स्थापित होने के बाद पंचम सिंह बुंदेला उस विस्तृत भूभाग के शासक बने। आगे चलकर यही क्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पंचम सिंह के उत्तराधिकारियों ने न केवल गढ़कुण्डार को और अधिक सुदृढ़ बनाया बल्कि अपने पराक्रम और कुशल शासन से बुन्देलखण्ड की सीमाओं का भी निरंतर विस्तार किया।

समय बीतने के साथ पंचम सिंह के वंशज रूद्रदेव ने अनुभव किया कि विस्तृत होते राज्य के लिए नई राजधानी की आवश्यकता है। एक दिन वे गढ़कुण्डार से शिकार के उद्देश्य से बेतवा और जामनी नदियों के संगम के समीप स्थित तुंगारण्य क्षेत्र की ओर निकले। बेतवा के दक्षिणी तट पर महर्षि तुंग का आश्रम और तपोवन स्थित था, जिसके कारण यह पूरा क्षेत्र तुंगारण्य कहलाता था।

यह प्रदेश प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण था। चारों ओर सघन वन, निर्मल जलधाराएं और मनोहारी वातावरण मानो प्रकृति ने स्वयं अपने दोनों हाथों से इसे सजाया हो। इस अनुपम सौंदर्य ने रूद्रदेव के मन को मोह लिया। उन्होंने महर्षि तुंग से अनुमति प्राप्त कर बेतवा के उत्तरी तट के घने वन में शिकार के लिए अपने दल के साथ प्रवेश किया और वहीं शिविर लगाया।

कुछ ही देर बाद उन्हें एक वन्य पशु दिखाई दिया। रूद्रदेव ने अपने शिकारी कुत्तों को आदेश दिया, 'ऊच्छ'(उछलो)। कुत्ते उसी दिशा में दौड़ पड़े और उनका पीछा करते हुए राजा भी आगे बढ़े। जिस दिशा में शिकार भागा, वहां की अनुपम प्राकृतिक छटा को देखकर रूद्रदेव मंत्रमुग्ध रह गए। उसी क्षण उन्होंने निश्चय कर लिया कि यही स्थान उनके राज्य की नई राजधानी बनेगा।

कहा जाता है कि उस समय उच्चारित 'ऊच्छ' शब्द ही अपभ्रंश होकर 'ओरछा' बन गया। यही नगर आगे चलकर बुंदेला साम्राज्य की गौरवशाली राजधानी बना।

रूद्रदेव की आगे की पीढ़ी में हुए ओरछा के महाराजा वीरसिंह देव प्रथम ने टहरौली का प्रशासन अपनी तृतीय रानी पंचम कुंअर के पुत्र बाधराय के हाथों में सौंपा। उस समय टहरौली की समृद्धि चरमोत्कर्ष पर थी।

उसके बाद टहरौली की कमान हरदौल के हाथों में आ गई, जो उस समय बड़ागांव के जागीरदार थे। फिर हरदौल के पश्चात् उनके पुत्र विजय सिंह, प्रताप सिंह और रायसिंह ने राज्य किया। रायसिंह ने सन् 1730 में अष्टगढ़ियों का बंटवारा पुत्रों के बीच किया तो टहरौली की जागीर उनके पुत्र लक्ष्मण सिंह को मिली।

टहरौली के राजा लक्ष्मण सिंह साहित्य संगीत एवं कला प्रेमी थे, जिस कारण उनके शासन काल में टहरौली की शान में बढ़ोत्तरी हुई। इसी समय टहरौली किले में कुछ नव निर्माण भी हुये। सेना में बढ़ोत्तरी, अनेक विशाल तोपों की किले पर स्थापना, किले में सुन्दर चित्रकारी के साथ गायन और वादन आदि विधायें क्षेत्र में विकसित हुईं।

लक्ष्मण सिंह की प्रथम रानी के दो पुत्र थे पजन सिंह और खुमान सिंह। लक्ष्मण सिंह की दूसरी रानी की संतान नृपत सिंह थे। नृपत सिंह को अष्टभैया जागीरदारों के साथ ओरछा राज्य के महाराजा भी लक्ष्मण सिंह की वैध संतान नहीं समझते थे। लक्ष्मण सिंह ने टहरौली की जागीर पजन सिंह को दी थी। पजन सिंह संभवतः निसंतान थे क्योंकि इनके आगे के वंश का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। खुमान सिंह के परिवार की भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

सन् 1770 से सन् 1815 तक का कालखण्ड टहरौली के लिये अतिमहत्वपूर्ण रहा। इस समयावधि में टहरौली की जागीर ने अनेक परिवर्तन देखे। अष्टगढ़ियों पर अधिकार के लिये झाँसी के मराठों और ओरछा राज्य के मध्य निरंतर झगड़े हो रहे थे। इसी समय सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मराठों ने लूट मचा रखी थी। मराठों के लगातार हमलों के चलते ओरछा राज्य प्रभावहीन हो गया था। मराठों ने ओरछा राज्य की बहुत सी भूमि व जागीरें सन् 1745 ई. में ही बंटवा ली थीं। सन् 1776 ई0 में ओरछा के महाराजा भारतीचन्द के निःसंतान होने पर उनके भाई विक्रमजीत ओरछा राज्य के शासक हुये। इस समय ओरछा राज्य की सैन्य व आर्थिक स्थिति अत्यंत कमजोर थी। मराठों की लूट से राजकोश खाली हो चुका था।

ओरछा के पास सेना के नाम पर मात्र 50 सैनिक, 1 हाथी एवं 2 घोड़े ही थे।' इसका लाभ उठाकर टहरौली, सिमरा, जीरौन, पलेरा एवं मोहनगढ़ के जागीरदार ओरछा राज्य के प्रति विद्रोहात्मक गतिविधियों में लगे हुये थे। टहरौली के तत्कालीन जागीरदार पजन सिंह ने ओरछा राज्य के कमजोर होने पर अपने राज्य टहरौली को अधिक शक्तिशाली बनाने हेतु जागीर के अनेक गांवों में गढ़ियों का निर्माण कराया।

ओरछा राज्य की कमजोर सैन्य शक्ति को देखते हुये टहरौली के जागीरदार पजन सिंह ने बाघाट से लेकर दतिया एवं टहरौली क्षेत्र से जुड़े आस पास के इलाकों में ओरछा राज्य के विरूद्ध खुला विद्रोह कर दिया।

ओरछा के महाराजा विक्रमजीत सिंह ने अपने राज्य की हीन एवं दयनीय स्थिति में सुधार करने के लिये झाँसी के सूबेदार से बरूआसागर के बदले आर्थिक सहायता प्राप्त की एवं झाँसी राज्य के सहयोग से विशाल सेना का संगठन बनाकर ओरछा राज्य की सैन्य व आर्थिक स्थिति सुदृढ़ की। ओरछा की सैन्य शक्ति में सुदृढ़ होने से उन्होंने कड़ाई के साथ सिमरा, जीरौन के विद्रोही जागीरदारों पर चढ़ाई कर उनकी गढ़ियों तोड़कर उन्हें नेस्तोनाबूद कर दिया था।

इस समय मराठों के साथ दतिया के शासक शत्रुजीत सिंह ने अपने भाई खेतसिंह के नेतृत्व में टहरौली के राजा पजन सिंह के विरूद्ध सेना भेजकर ओरछा राज्य की सहायता की और टहरौली के जागीरदार पजन सिंह को उन्होंने शक्तिहीन कर उनसे टहरौली जागीर छीन ली थी। टहरौली राज्य की अनेक गढ़ियों को ध्वस्त कर दिया गया। टहरौली के समीपवर्ती गांव बमनुआं की खूबसूरत गढ़ी (1770 ई. में पजनसिंह द्वारा निर्मित) को लूट के बाद इसे पूरी तरह नष्ट कर इसके विशाल दरवाजों को टहरौली के किले में स्थापित किया, जो आज भी इस किले में बमनुआं दरवाजे के नाम से जाने जाते हैं।

पजन सिंह के बाद ओरछा राज्य ने टहरौली के किले पर अधिकार कर जागीर को अपने राज्य में मिला लिया और वहां की प्रशासनिक व्यवस्था हेतु परगना का निर्माण कर किलेदार एवं कुछ कर्मचारी रख दिये।

इसी दौरान सन 1795 के पश्चात् पूना दरबार की स्थिति कमजोर हुई, जिसके प्रभाव से झाँसी के सूबेदार की भी स्थिति निर्बल हो गई। सन् 1795 के बाद से झाँसी के सूबेदार शिवराव भाऊ के बीमार पड़ने (सन् 1812) तक अष्टगढ़ियों के जागीरदारों ने अपनी सैन्य व आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया, जिस कारण मराठों द्वारा इनसे न तो चौथ वसूल की जा सकी थी और न ही उन पर दबाव बनाये रखा जा सका।

सन् 1800 ई में ओरछा राज्य की सहायता से नृपत सिंह टहरौली के शासक बने तथा उन्होंने टहरौली स्टेट की स्थिति को और भी मजबूत किया। ओरछा राज्य एवं नृपत सिंह के मध्य एक समझौता हुआ था, जिसके अनुसार ओरछा राज्य नृपत सिंह को टहरौली की जागीर का शासक बनने में सहायता करेंगे। इसके एवज में नृपत सिंह पांच वर्ष बाद टहरौली की जागीर छोड़कर कोई अन्य जागीर स्वीकार करेंगे एवं टहरौली का किला व संपूर्ण जागीर ओरछा राज्य को सौंप देंगे।

पजन सिंह के सौतेले भाई नृपत सिंह को टहरौली के शासक बनने के बाद अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ा। अष्टभैया जागीरदार नृपत सिंह को टहरौली का वैध शासक स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

अष्टगढ़ियों के राजाओं का भी मानना था कि पजन सिंह ही उनके सम्बन्धी थे तथा उनके पश्चात् टहरौली का राज्य अष्टभैया जागीर के सात भाइयों को मिलना चाहिये।

ओरछा राज्य का मत था कि टहरौली पर पजन सिंह के बाद ओरछा का कब्जा था इसलिये वह जिसे चाहे उसे टहरौली जागीर दे सकते हैं। टहरौली पर कब्जे को लेकर ओरछा राज्य का अष्टभैया जागीरदारों से मनमुटाव हो गया था। झाँसी के मराठा राज्य के साथ अंग्रेजी कंपनी सरकार ने भी नृपत सिंह को टहरौली के शासक के रूप में मान्यता नहीं दी। नृपत सिंह के निर्भीक व्यक्तित्व के कारण इनका मानना था कि भविष्य में नृपत सिंह इस क्षेत्र में मराठों एवं कंपनी सरकार के लिये बड़ी मुसीबत बन सकते हैं। टहरौली जागीर के अधिकांश गांव पहले ही मराठों ने कंपनी सरकार के खर्चे के लिये दे दिये थे, जिन्हें नृपत सिंह पुनः अपनी जागीर का हिस्सा बनाना चाहते थे।

नृपत सिंह की ताजपोशी के पांच वर्ष के पश्चात् ओरछा राज्य एवं नृपत सिंह में टहरौली पर अधिकार को लेकर फिर से विवाद प्रारंभ हुआ, जिसका परिणाम टहरौली के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ। मराठों की भी नजर टहरौली के विशाल किले और समृद्ध जागीर पर थी। टहरौली के साथ ककरबई को लेकर भी ओरछा राज्य और झाँसी के मराठों के बीच तनाव बढ़ गया था। अंग्रेजी कंपनी सरकार भी टहरौली की इन गतिविधियों पर पैनी नजर रखे हुई थी।

सन् 1808 ई0 में ओरछा राज्य के तत्कालीन राजा विक्रमजीत और टहरौली के जागीरदार नृपत सिंह के मध्य टहरौली पर अधिकार को लेकर अत्यन्त विवाद कर स्थिति बन गई थी। मराठों के लूट एवं दमन से बचाव व सुरक्षा तथा स्थानीय जागीरदारों के बढ़ते विद्रोह के कारण ओरछा के महाराजा विक्रमजीत सिंह ने 23 दिसंबर 1812 को अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार से साथ एक सुरक्षात्मक संधि कर ली थी, जो कंपनी सरकार के राजनैतिक प्रतिनिधि जॉन वाकव एवं ओरछा राज्य के प्रतिनिधि दुक्कन लाल के मध्य संपन्न हुई। उसके अनुसार ओरछा राज्य एवं अंग्रेजी कंपनी सरकार एक दूसरे के मित्र को मित्र एवं शत्रु को शत्रु समझेंगे। इसके अतिरिक्त पांच और बिन्दुओं पर सहमति बनी।

सन 1812 की संधि के बाद ओरछा राज्य (महाराजा विक्रमजीत) ने नृपत सिंह से निपटने के लिये झाँसी के मराठा सूबेदार से टहरौली को अपने राज्य में मिलाने की सहमति और सहायता मांगी थी। झाँसी के सूबेदार शिवराव भाऊ ने ओरछा राज्य को इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया था कि टहरौली से जो वार्षिक कर झाँसी को मिलता था, उस कर को ओरछा राज्य पहले की तरह झाँसी मराठा राज्य को देता रहे और

टहरौली का किला ले लेने के खर्च के बाद जो राजस्व बचे, उसका भी आधा हिस्सा झाँसी राज्य को मिलना चाहिये।

इतिहासकारों के अनुसार मराठों की सहायता से अंग्रेजी कंपनी सरकार ने 1815 ई0 में टहरौली के अंतिम प्रशासक राजा नृपत सिंह को रास्ते से हटाने के लिये और टहरौली को ओरछा राज्य से लेने के लिये झाँसी में आयोजित जागीरदारों के सम्मेलन में यह कहकर आमंत्रित किया कि वे उन्हें टहरौली का शासक स्वीकार कर उनकी ताजपोशी करना चाहते हैं। इस सभा में उपस्थित स्थानीय जागीरदारों को मराठों और अंग्रेजी कंपनी सरकार ने पहले ही दबाव में ले लिया था परन्तु, सभा के दौरान नृपत सिंह की हत्या से स्थानीय बुन्देला जागीरदारों में विद्रोह होने की आशंका के चलते एक षडयंत्र रचा गया। मराठों और अंग्रेजी कंपनी सरकार ने तय किया कि उनकी हत्या इस तरीके से की जाय कि नृपत सिंह की मौत एक दुर्घटना लगे। इससे विद्रोह भी न हो और टहरौली जागीर पर मराठों का अधिकार हो जायेगा तथा कंपनी सरकार टहरौली का राजस्व लेती रहे।

इस सभा में कंपनी के अंग्रेज अफसरों ने कहा कि वे नृपत सिंह को टहरौली का शासक स्वीकारते हैं, जिसके लिये कंपनी सरकार उन्हें राजसी वस्त्र भेंट करना चाहती है। कंपनी सरकार की अपेक्षा है कि नृपत सिंह झाँसी से इसी राजशाही पोशाक को पहनकर पालकी से टहरौली जाएं और वहां पहुंचने पर सम्मानपूर्वक टहरौली की जागीर उन्हें सौंप दी जायेगी।

कहा जाता है कि इससे पहले ही अंग्रेजों ने मराठो की सहायता से इस पोशाक को पानी में जहर घोलकर कई दिनों तक उसमें डालकर सुखाया था। जहर बुझी इस पोशाक को पहनकर नृपत सिंह पालकी में बैठे। उस सभा में मौजूद उनके ही पारिवारिक जागीरदारों को संभवतः इस षडयंत्र के विषय में जानकारी न रही हो या कुछ अन्य कारण हो इस विषय पर इतिहास मौन है परन्तु, वे सभी चुप ही बैठे रहे।

जहर की पोशाक पहनते ही नृपत सिंह के शरीर पर फफोले पड़ गये। वह तुरन्त ही झाँसी से टहरौली को लौटे। टहरौली तक पहुंचते-पहुंचते जहर उनके शरीर में पूरी तरह से प्रवेश कर चुका था। झाँसी से टहरौली लौटते समय उनका निधन टहरौली की सीमा पर बमनुआं गांव में स्थित उनके ही राजकीय बाग-लखूले पर ही हो गया था। टहरौली में जब पालकी नीचे रखी गई तब उसमें बैठा एक निर्भीक राजा का शरीर अर्थी बन चुका था।

यद्यपि झाँसी राज्य एवं कंपनी सरकार द्वारा नृपत सिंह की हत्या की साजिश से ओरछा राज्य पूर्णतः अनभिज्ञ था। ओरछा राज्य ने मराठों से नृपत सिंह के विरूद्ध सिर्फ सैन्य सहायता की मांग की थी। संभवतः मराठों ने ओरछा राज्य को नृपत सिंह के हत्या के षडयंत्र से इसलिये अलग रखा क्योंकि मराठों का मानना था कि एक ही कुल व निकट के पारिवारिक संबंधी होने के कारण ओरछा राज्य नृपत सिंह की हत्या को कभी स्वीकार नहीं करेगा।

नृपत सिंह की हत्या के तुरन्त बाद ओरछा राज्य ने संपूर्ण टहरौली जागीर एवं किले पर कब्जा कर लिया क्योंकि उनका मानना था कि टहरौली जागीर ओरछा राज्य का ही भाग है। इसके कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण स्वाभाविक ही ये जागीर ओरछा राज्य का भाग होना चाहिये। ओरछा राज्य ने झाँसी मराठा सूबेदार को टहरौली जागीर में से कुछ भी नहीं दिया। ओरछा राज्य का कहना था कि टहरौली पर अधिकार करने में झाँसी के मराठों ने उनकी ज्यादा सहायता नहीं की थी अपितु उनके पारिवारिक संबंधी नृपत सिंह की संदिग्ध हत्या के लिये भी परोक्ष रूप से मराठे ही जिम्मेदार हैं इसलिये ओरछा राज्य भी अपनी शर्त पूरी करने के लिये बाध्य नहीं है।

उधर, झाँसी के मराठा सूबेदार का कहना था कि ओरछा राज्य से उपरोक्त समझौता होता या न होता लेकिन, टहरौली समेत सभी अष्टगढ़ियों से मराठे चौथ तो वसूल ही रहे थे और आधी जागीर पर झाँसी राज्य का अधिकार भी था, फिर नृपत सिंह की हत्या के बाद टहरौली की संपूर्ण जागीर ओरछा राज्य ने कैसे अपने अधिकार ली। इसी दौरान मराठों ने नृपत सिंह के परिजनों को टहरौली राज्य से निकालकर लौड़ी-भड़ोकर जागीर देकर वहां का प्रशासक बना दिया।

टहरौली को लेकर मराठों और ओरछा राज्य के मध्य विवाद ज्यादा बढ़ा तब दोनों पक्ष ने मध्यस्थता हेतु अंग्रेजों की सहायता ली तथा अपने-अपने दावे अंग्रेजों के सामने प्रस्तुत किये। अंग्रेजों ने दोनों के दावों को अस्पष्ट घोषित कर दिया। चूंकि टहरौली अष्टभैया जागीर का ही भाग थी और टहरौली के जागीरदार 1776 तक पूना के पेशवा को झाँसी राज्य के माध्यम से नियमित कर दे रहे थे। इसलिये अंग्रेजों ने निर्णय किया कि टहरौली जागीर पर मराठों का भी कुछ अधिकार है।

इस निष्कर्ष पर अंग्रेजों ने मराठों एवं ओरछा राज्य के मध्य पुनः टहरौली को लेकर एक समझौता कराया, जिसके अनुसार टहरौली जागीर एवं किले को ओरछा राज्य ने लिया और बदले में झाँसी के मराठे ओरछा

राज्य से तीन हजार रुपया वार्षिक कर लेंगे। यदि ओरछा राज्य इस कर को देने में असमर्थ रहा तो मराठों को इतने ही आय का एक गांव ओरछा राज्य देगा।

नृपत सिंह के पश्चात् टहरौली जागीर हमेशा के लिये वीरान हो गयी। टहरौली का किला ओरछा राज्य के पास रहा। ओरछा राज्य ने भी टहरौली पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया परिणाम स्वरूप टहरौली का किला एवं अन्य इमारतें वीरान होता चली गईं। 27 दिसम्बर, 1842 ई0 में अंग्रेजों की झाँसी के राजा गंगाधर राव से एक संधि हुई, जिसमें झाँसी के मराठा राज्य ने अंग्रेजी सेना के खर्च के लिए अनेक गांव के राजस्व में 12.8 प्रतिशत हिस्सा कंपनी को देना स्वीकार किया। इनमें टहरौली जागीर के कुछ गांव भी सम्मिलित थे।

उपरोक्त गांवों को सन् 1858 के बाद ब्रिटिश सरकार ने सीधे अपने अधिकार में लिया। इन गांवों में देश के स्वतंत्र होने तक किसी जागीर का हस्तक्षेप नहीं रहा। ब्रिटिश सरकार द्वारा नियंत्रित क्षेत्र के इन गांव में प्राथमिक स्कूल व अन्य राजकीय सुविधा में कंपनी व ब्रिटिश सरकार ने प्राथमिकता दी। संभवतः इस कारण ही कंपनी सरकार और बाद में ब्रिटिश सरकार से नियंत्रित इन गांवों में जागीर के अन्य गांवों की अपेक्षा अधिक विकास संभव हो पाया।

अंग्रेजों ने सन् 1928 में टहरौली की तहसील को भी निवाड़ी स्थानांतरित कर दिया। टहरौली को 1947 के बाद 3 तहसीलों मोंठ, गरौठा और मऊ में विभक्त कर दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग दो दशक बाद, वर्ष 1967 में टहरौली में हाईस्कूल की स्थापना हुई। यह क्षेत्र की शिक्षा व्यवस्था के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

वर्ष 1997 में इसे झाँसी जनपद की पांचवीं तहसील का दर्जा प्राप्त हुआ। प्रारंभिक वर्षों में तहसील का अस्थायी मुख्यालय टहरौली के निकट स्थित परसा गांव में स्थापित किया गया था। बाद में वर्ष 2002 में टहरौली में नवीन तहसील भवन का निर्माण पूर्ण होने पर संपूर्ण तहसील कार्यालय परसा से स्थानांतरित कर यहां स्थापित कर दिया गया। तहसील परिसर के समीप ही पुलिस विभाग के क्षेत्राधिकारी का कार्यालय भी स्थित है।

इसके बाद सड़कों, विद्युत व्यवस्था, पेयजल और कृषि से जुड़ी सुविधाओं में भी धीरे-धीरे सुधार हुआ। आज यहां विद्यालय, बैंक, स्वास्थ्य केंद्र तथा अन्य शासकीय संस्थाएं क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यद्यपि औद्योगिक विकास अभी अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुंच सका है, फिर भी कृषि, व्यापार और शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर प्रगति हो रही है।

टहरौली की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है और यहां की अधिकांश आबादी खेती तथा उससे जुड़े कार्यों पर निर्भर है। क्षेत्र की उपजाऊ भूमि और अनुकूल जलवायु के कारण वर्ष भर विभिन्न प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है। रबी मौसम में गेहूं, चना, मटर, सरसों, मसूर और जौ की खेती प्रमुख रूप से की जाती है, जबकि खरीफ मौसम में मूंगफली, मूंग, उड़द, तिल सहित अनेक दलहनी और तिलहनी फसलें बोई जाती हैं। इसके अतिरिक्त टहरौली में आलू, टमाटर, बैंगन, भिंडी, मिर्च, गोभी तथा अन्य मौसमी सब्जियों का भी बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है।

टहरौली की सांस्कृतिक पहचान बुंदेलखंड की समृद्ध लोक परंपराओं से गहराई से जुड़ी हुई है। यहां का लोक जीवन आज भी अपनी सादगी, आत्मीयता और पारंपरिक रीति रिवाजों के लिए जाना जाता है। गांवों में विवाह, जन्मोत्सव और अन्य मांगलिक अवसरों पर बुंदेली लोकगीतों की मधुर स्वर वातावरण को आनंदमय बना देती हैं। आल्हा गायन यहां की सबसे लोकप्रिय लोकगायन परंपराओं में से एक है, जिसमें वीरता, त्याग और पराक्रम की गाथाएं पूरे उत्साह के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। वहीं लोकदेवता कारसदेव की स्मृति में गोट गायन तथा लोकनायक हरदौल की स्मृति में हरदौल गायन की समृद्ध परंपरा आज भी जीवंत है। इसमें केवल भक्ति और श्रद्धा ही नहीं, बल्कि बुंदेलखंड के इतिहास, सांस्कृतिक मूल्य निहित है। इसके अतिरिक्त फाग, कजरी, ढिमरई, सुआटा, टेसू, सोहरे, दादरे आदि बेहद लोकप्रिय है। वहीं लोकनृत्य में राई, दिवारी, मौनिया, होरी, ढिमरयाई, स्वांग, जुगिया, झंझरिया खूब चर्चित है।

टहरौली में होली, दीपावली, दशहरा, नवरात्रि, मकर संक्रांति और रक्षाबंधन जैसे प्रमुख पर्व अत्यंत उत्साह और सामूहिक सहभागिता के साथ मनाए जाते हैं। नवरात्रि के अवसर पर मंदिरों में विशेष पूजा अर्चना और धार्मिक आयोजन होते हैं। किले के पास स्थित राजराजेश्वरी देवी पीठ पर नवरात्रि में दूर-दूर से लोग माई के दर्शन करने आते है। जल विहार के अवसर पर राम जानकी मंदिर के भगवन पालकी पर बैठ कर गांव में ग्रामवासियों को दर्शन देने के लिए नगर में जाते है। जो भक्त और भगवन के सम्बन्ध को एक अलग नजरिए से दर्शाता है।

किले से कुछ ही दूरी पर स्थित पहाड़ी पर सिद्ध बाबा का पवित्र स्थान है, जहां मकर संक्रांति (बुडकी) के अवसर पर प्रमुख केंद्र धार्मिक बन जाता है। लगभग पिछले दो दशक से प्रतिवर्ष 14 जनवरी से 25 जनवरी तक यहां भव्य मेले का आयोजन किया जाता है, जिसमें दूर-दूर से हजारों श्रद्धालु और पर्यटक सम्मिलित

होते हैं। मेले में विभिन्न प्रकार की दुकानों, आकर्षक झूलों तथा स्थानीय व्यंजनों और खानपान के स्टालों से पूरा परिसर उत्सवमय हो उठता है। यह मेला केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक एकता का भी प्रतीक है।

मेले के दौरान प्रतिदिन प्रातःकाल पहाड़ी पर स्थित सिद्ध आश्रम में वैदिक विधि से यज्ञ का आयोजन किया जाता है, जिसमें बड़ी संख्या में श्रद्धालु आहुति देकर लोककल्याण और सुख समृद्धि की कामना करते हैं। दिन के समय नीचे स्थित विशाल मैदान में श्रीमद्भागवत कथा का आयोजन होता है, जहां श्रद्धालु धर्म, भक्ति और भारतीय संस्कृति का संदेश ग्रहण करते हैं। संध्या होते ही वातावरण रामलीला के मंचन से भक्तिमय और सांस्कृतिक रंगों से भर उठता है। भगवान श्रीराम के जीवन प्रसंगों का सजीव मंचन दर्शकों को भारतीय आदर्शों और नैतिक मूल्यों से परिचित कराता है। मेले का सबसे प्रेरणादायक और सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण आयोजन 25 जनवरी को संपन्न होने वाला सामूहिक विवाह समारोह है, जिसमें क्षेत्र की आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों की कन्याओं का विवाह सम्मानपूर्वक कराया जाता है।

सिद्ध आश्रम के अलवा बजरिया बाजार की रामलीला भी सांस्कृतिक विरासत का एक अनूठा और गौरवपूर्ण अध्याय है। बजरिया बाजार में किले के मुख्य द्वार के समीप स्थित श्रीराम जानकी मंदिर परिसर में 100 साल से भी ज्यादा समय से प्रतिवर्ष रामलीला का नियमित मंचन होता आ रहा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें किसी बाहरी कलाकार को आमंत्रित नहीं किया जाता। कस्बे के ही युवा, बुजुर्ग और बच्चे मिल कर एक से दो महीने पहले से पात्रों के चयन, संवादों के अभ्यास और मंच सज्जा की तैयारियां प्रारंभ कर देते हैं। प्रतिवर्ष फरवरी माह में आयोजित होने वाली यह रामलीला पूरे क्षेत्र के लोगों के लिए आस्था और आकर्षण का केंद्र होती है। इसकी एक और विशिष्ट पहचान हिंदू मुस्लिम एकता का अद्भुत उदाहरण है, जहां दोनों समुदायों के कलाकार भगवान श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान, रावण तथा अन्य पात्रों की भूमिकाएं निभाकर सामाजिक सौहार्द, सांस्कृतिक समरसता और गंगा जमुनी परंपरा का प्रेरणादायक संदेश देते हैं। यही विशेषता टहरौली की रामलीला को अन्य स्थानों से अलग और विशिष्ट बनाती है।

पिछले दो वर्षों से टहरौली के नागरिकों द्वारा अपनी कला, साहित्य, संस्कृति और ऐतिहासिक विरासत के संरक्षण एवं संवर्धन के उद्देश्य से "टहरौली महोत्सव" का आयोजन किया जा रहा है। यह महोत्सव स्थानीय

प्रतिभाओं को मंच प्रदान करने के साथ साथ टहरौली की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं, लोक कलाओं और गौरवशाली इतिहास को व्यापक स्तर पर लोगों तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरा है।

टहरौली में पर्यटन की अपार संभावनाएं विद्यमान हैं। यह क्षेत्र झांसी, ओरछा, गढ़कुंडार और बरुआसागर जैसे प्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं पर्यटन स्थलों के निकट स्थित होने के कारण पर्यटन परिपथ का महत्वपूर्ण केंद्र बन सकता है।

वर्तमान समय में टहरौली के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक रोजगार का अभाव है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी अधिकांश युवाओं को रोजगार की तलाश में अपना प्यारा टहरौली छोड़कर छोटे-छोटे घोंसले बनाने पड़ रहे हैं। यदि स्थानीय स्तर पर रोजगार और उद्योगों का विकास हो, तो यह प्रतिभाशाली युवा अपनी जन्मभूमि में रहकर ही उसके विकास और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

टहरौली का ऐतिहासिक किला आज भी अपने गौरवशाली अतीत की गाथा सुनाता है। लगभग पांच एकड़ क्षेत्र में फैला यह विशाल दुर्ग अपनी भव्यता और स्थापत्य कला के लिए विशेष पहचान रखता है। किले के भीतर पांच विशाल कुएं, एक प्राचीन बावड़ी, आलीशान पांच मंजिला राजमहल, अनेक आवासीय कक्ष तथा कई अन्य ऐतिहासिक भवन स्थित हैं। किले के दोनों ओर फैले दो विशाल तालाब इसकी सुंदरता में चार चांद लगाते हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी पर स्थित सिद्ध आश्रम धाम धार्मिक आस्था और प्राकृतिक सौंदर्य का अद्भुत संगम प्रस्तुत करता है। यदि इन धरोहरों का समुचित संरक्षण, सौंदर्यीकरण और प्रचार किया जाए, तो टहरौली भविष्य में बुंदेलखंड के प्रमुख ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पर्यटन स्थलों में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर सकता है।

भारत के अनेक छोटे कस्बों की भांति टहरौली भी विकास की नई राह पर अग्रसर है। लंबे समय तक उपेक्षा का सामना करने के बावजूद इस क्षेत्र में पर्यटन की अपार संभावनाएं विद्यमान हैं। ऐतिहासिक धरोहरें, प्राकृतिक सौंदर्य, धार्मिक आस्था के केंद्र और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत यदि योजनाबद्ध रूप से विकसित किए जाएं तो टहरौली न केवल बुन्देलखण्ड बल्कि पूरे उत्तर प्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थलों में अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित कर सकता है।

~ अनमोल दुबे

संदर्भ

[1.]महेन्द्र वर्मा (2008), *बुन्देलखण्ड के मूर्तिशिल्प*, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।

[2.]डॉ. अजय सिंह कुशवाहा (2024), *बुन्देलखण्ड की अष्ट गधियां 'वैभवपूर्ण ऐतिहासिक विरासत*, शतरंग प्रकाशन, लखनऊ।

[3.]डॉ. अजय सिंह कुशवाहा (2020), *बुन्देलखण्ड किलों की भूमि 'शौर्य,कला,संस्कृति एवं पर्यटन'*, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ।

[4.]बृजेश कुमार श्रीवास्तव (2018), *बुंदेलखंड का इतिहास*, डी. के. प्रिंटवर्ल्ड प्राइवेट लिमिटेड।

[5.]किरिट के. शाह (1988), *एंशिएंट बुंदेलखंड: रिलिजियस हिस्ट्री इन सोशल इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव*, ज्ञान पब्लिकेशन हाउस।